उपन्यास की नयी रचनाशीलता
"कलि - कथा : वाया बाइपास" - अलका सरावगी

कथा कही जा रही है ... लेखिका किशोर बाबू द्वारा इतिहास के पन्नों को आज के साथ जोड़कर बाईपास करवाती हैं । इस प्रक्रिया में 'किशोर बाबू' के 'भवधूरे' पन के कारण उन्हें 'सड़कमाप' की आदत पड़ गई है । बाइपास सफल हुआ पर किशोर बाबू के सिर पर गुठली उभर आई थी । लेखिका का मस्तिष्क अपनी रचनाप्रक्रिया में उसी गुठली के द्वारा रिसते-रिसते इतिहास की परतों को उखेडता जाता है । उसे अपने वर्तमान से जोड़ने के तानों-बानों में आत्मकथात्मक रूपों को भी व्यक्त करता जाता है । किशोर बाबू का आत्मकथात्मक रूप लेखिका द्वारा व्यक्त होने के कारण उपन्यास इस स्वरुप को प्राप्त करता है अन्यथा वह आत्मकथा भर बनकर रह जाता । कलि-कथा की बुनावट किशोर बाबू वाया बाइपास होती हुई लगभग तीस पैंतीस वर्षों के इतिहास को पास कर जाती है, समाज के साथ-साथ बदलते परिवेश में ब्रिटिश प्रभाव को भी साथ लेकर 'लाल झंडा', 'तिरंगा झंडा', ''भगवा झंडा' मार्क्सवाद से बाइपास होते-होते स्वातंत्र्य का बोध आधुनिकतावाद - उत्तरआधुनिकतावाद, उपनिवेशवाद, उत्तर-उपनिवेशवाद को उजागर करती है । कलि-कथा में आधुनिकतावाद के, उत्तराधुनिकता के लक्षण तो हैं ही पर उपनिवेशवादवाला प्रवृत्तिगत विचार हमारे मानसिक विश्व को झकझोरकर उस गुलामी से बाहर आने का प्रयास ज्यादा महत्त्वपूर्ण बन पाया है । शासकों को हमेशा सही माननेवाले हमारे मानदंड मानसिक गुलामी के लक्षण थे जिनमें से बाहर आना मतलब कि अपनी भारतीयता की अस्मिता को अंग्रेजीयत के प्रभाव में स्वागत में कितना बचा पाते हैं - इसका जायज़ा बाइपास के द्वारा ही संभव था ...

किशोर बाबू के आग्रह पर उन्हीं की कुछ बातें किस्से के बाहर –

"इस संसार में बीता हुआ कुछ भी खोता नहीं है । कैसे खो सकता है जब हम हैं अभी तक ? ज़्यादा से ज़्यादा वह हमारे अंदर भीतर कहीं दूर पुराने उजड़े शहरों की तरह ऊपर की परतों की तह में दफन हो जाता है – वे सारे शब्द जो हमने सुने, जो हमने बोले, वे सारे दृश्य जो हमने देखे, वे सारे सुख-दुख जो हमने झेले । बीती हुई एक घड़ी भी कभी मरती नहीं । वह वहीं अंदर दुबकी रहती है और कहते हैं कि जिस समय आदमी मरता है वह एक फिल्म कि रील की तरह अपनी जी हुई जिंदगी को फिर बचपन से अभी तक पूरी - पूरी देखता है । लेकिन रिलीज हुई फिल्म की तरह वह उसमें कुछ बदल नहीं सकता ।" (पृ. १३ - १४)

... और यूं शुरु होती है 'किशोर' की रिलीज फिल्म – कलि-कथा : १९४० । उस समय का वह ब्रिटिश राज । हमारी ऐतिहासिक घटनाएं जो दुबकी हुई पड़ी थी ... अपने सामाजिक और राजकीय परिवेश से उभरकर किशोर की गुठली में परिवर्तित होकर लेखिका को आज के परिप्रेक्ष्य में सोचने पर मजबूर करती है ।

ब्रिटिश राज आया था व्यापार करने, उपनिवेशन करने – औपनिवेशन – अर्थात् आरंभ हुआ था व्यापार से, अर्थशास्त्र से, लगभग सन् १५०० में। भारत देश में इसकी शुरुआत हुई सन् १८०० में। जिन्हें शत्रु माना था, जिसने अपने देश पर राज्य किया था, उनके जाने के बाद लगा था कि सबके सब सपने अब पूरे हो सकेंगे पर स्वतंत्र भारत में – "किशोर को कई दशकों के बाद पता चलता है कि जब शत्रु का चेहरा खोजने पर अपना ही चेहरा शीशे में नजर आने लगता है।" (पृ. १९) उसी तरह अंग्रेज जब कलकत्ता पहुंचे थे तब उनका साथ बंगालियों ने ही दिया था। हमारे देश की अलग-अलग जातियां आज अपनी अस्मिता की खोज में अपनी-अपनी संस्कृति में जो अच्छाई या बुराई है उसमें अपने आप को टटोल रही है। मारवाड़ी, बंगाली, मुसलमान, अंग्रेज सब कलकत्ता के ही है। व्यापारी कौमों ने निवेशन से उपनिवेशन किया उसीसे उपनिवेशवाद या औपनिवेशवाद पनपा। जहां-जहां कॉलोनियां बनीं वहां-वहां उनकी बस्ती फैलती गई। इसे ही मराठी, कोंकणी, गुजराती में वसाहत, वसाहतिकरण और वसाहतिकवाद से जाना जाता है। उपनिवेशवाद में जो प्रवृत्ति थी वह शासकों की स्तुति की थी पर उत्तर-उपनिवेशवाद या वासाहतिकवाद में प्रवृत्तियाँ बदलती गईं ... शासक ही हमेशा सही होता है - का मामला अब नहीं रहा पर उनमें भी कमियां थीं तो हममें भी हैं। हिंदुस्तानी हैं, इंग्लिशतानी भी आज हमारी संस्कृति में धुलमिल गए हैं ... तभी तो कोलकाता में भी मिलीजुली संस्कृति का जिक्र आता है। "फिरंगी काली" (पृ. ३८)..." बहूबजार की आधी क्रिस्तानी - आधी हिंदुस्तानी औरतें यहां मां काली को भेंट भेजती रहती थीं" –

उपन्यास की रचनाशीलता की विशेषता यह है कि "कथा-लेखिका का अनिवार्य हस्तक्षेप भी आता है और मूलकथा अवांतर कथा में घुस जाती है। किशोर की गुठली अपने ग्रेट ग्रैंड फादर रामविलास बाबू उर्फ बड़े बाबू (१८६०-१९२६) की डायरी के पन्नों से जदि निर्वासिने पाठाबेई - कोलकाता - अर्थात कलकत्ता - यदि निर्वासन में भेजना ही हो तो – होती हुई मरुभूमि में पहुंच जाती है। कथा किशोर बाबू की है इसलिए चौबीस कैरेट में बाईस कैरेट मर्जी उनकी ही चलनी है। वहां का रेल इतिहास उस परिवार को रेल पटरी से लाता हुआ कैलकट्टा - कालिकाता - पहुंचा जाता है। "दिसावर" जाना आसान हो जाता है और मारवाड़ा परिवार वहां बसने लगते हैं। colony, colonization, colonial colonism इन शब्दों का संबंध अर्थशास्त्र से ही था। Encyclopaedia में इस Colonial Theories का Economic Theory, Religious Theory, Political Theory, Moral Theory, में विश्लेषित किया गया है इनकी गहन चर्चा किए बगैर हम सिर्फ उपनिवेशवाद और उत्तर उपनिवेशवाद – वासाहतिकरण और उत्तर वासाहतिकरण के बारे में ही सोचे क्योंकि उपन्यास की रचनाशीलता को समझने के लिए दोनों प्रवृत्तियों में भेद करना आवश्यक हो जाता है।

उत्तर - उपनिवेशवाद में शासक और शासित का यह भेद मिटता जाता है। मानसिक गुलामी से बाहर आकर वह इतिहास को तटस्थता से स्वीकारता है, अपनी हीनता ग्रंथि से बाहर आता है और अपनी संस्कृति मे पराए शासक की संस्कृति का - जो स्वागत स्वरुप में अपनाया जा चुका है, वह पराया न रहकर अपना बन गया है इसका एहसास होता है। जो अच्छा है अपनी संस्कृति में स्वीकार्य है तथा अनावश्यक तत्व छूटते जाने का सहज आविष्कार होता है जो कि इस

उपन्यास का प्रतिपाद्य है । शासकों की संस्कृति का स्वीकार अपनी संस्कृति के विकास के रूप में जो स्वागतयोग्य है, उसीका चुनाव इस उपन्यास में हुआ है और यही चुनने की स्वतंत्रता ही उत्तर औपनिवेशवाद की खसलत है उत्तर वासाहीकता की निशानी है । जिसका चयन लेखिका ने समाज - संस्कृति के अंतर्गत रखने का प्रयास किया है जिसे बाइपास नहीं किया जा सकता । लेखिका का यही सांस्कृतिक योगदान इस उपन्यास की उपलब्धि है ।

वासाहतिक - औपनिवेशी या उपनिवेशीकरण में मिश्र संस्कृति पनपती है - आधे हिंदुस्थानी और आधे अंग्रेज बच्चे की क्या जिंदगी होती है .. काला - फिरंगी, यूरेशियन नामों का मज़ाक में 'ची-ची' और न जाने क्या क्या कहा जाता है ? .. दोगला, बास्टर्ड (पृ. ४६) कलकत्ता के 'कालेशहर' 'गोरे शहर' के बीच ये यूरेशियन लोग रहते हैं ... । उपन्यास में लेखिका आधुनिक कथा किस तरह की होती है का जिक्र करती है पर किशोर बाबू की इच्छानुसार पहली रेलयात्रा का ब्यौरा उन्हीं की जुबानी प्रस्तुत करती है । डायरी के पन्नों से उपन्यास आगे बढ़ता है... । देशी लोगों से विदेशी का व्यवहार जिस तरह बयां किया गया है वह पूरा टुकड़ा (कृ. ५४) शासकों के विरुद्ध देशी लोगों की आवाजें ही चाहे डायरी के पन्नों से होती हुई लेखिका के इतिहास से उपन्यास का पन्ना बन गई हैं । तीसरे विश्व में शासकों के खिलाफ विरोध का स्वर जितना तीव्र है उतना हमारे देश में नहीं है पर फिर भी उत्तर उपनिवेशवाद की यह विरोधी प्रवृत्ति ही इस उपन्यास की मजबूत थाती है । जहां से निर्वासाहतिकरण की प्रक्रिया शुरु होती है ।

जहां जहां पर कोलोनी स्थापित हुई थी वहां वहां पर कॉलोनाईज्ड शासकों ने अपने को सुप्रीम माना ही है । तीसरे विश्व के देशों में इन सूत्रों को देखा जाता है Black women's writing in America or anywhere - उपन्यास एक ऐसा माध्मय है, शस्त्र है जिससे कॉलोनियल के सामने इस्तमाल किया जा सकता है, या यूं भी कहा जा सकता है कि उपन्यास की रचना ही कॉलोनी के खिलाफ खड़े होकर अपनी पहचान, अपनी अस्मिता को उजागर करने के लिए होती है । कोलोनियल माइंड को डीकॉलोनाईज़्ड करने में उपन्यास की सहायता ली जाती है । गोवा में इसका अच्छा उदाहरण लेखक Lambert Mascarenhas रचित Sorrowing Lies My Land है । यहां पर डीकॉलोनाइज़्ड के लिए हिंदी में क्या लिखेंगे ? निऔपनिवेशीकरण, निउपनिवेशीकरण या निर्वासाहतीकरण ? खैर जो भी हो यहां पर्ल एस्. बर्क के उपन्यास 'द गुड अर्थ - The good Earth - को भी उसी अर्थ में देखा जा सकता है । अलका सरावगी अपने उपन्यास में भी वसाहतों को निर्वासाहतिक करने का कार्य करती दृष्टव्य होती हैं । हालांकि हमारे साहित्य में लैटिन अमेरिकन और ब्लैक लिटरेचर की तरह वह छटपटाहट अभी उतनी तीव्र नहीं हुई है पर फिर भी अलकाजी के प्रयत्न को सराहना ही होगा । शासकों का पर्दाफाश चाहे अपने का हो या पराए सब का - सम्यक दर्शन ही उनकी उपलब्धि है ।

कलि-कथा में सिर्फ 'विदेशी से स्वतंत्रता नहीं है पर देशी-विदेशी, अपना - पराया, देश - राष्ट्र इन द्वंदों से परे जाकर उन्हें बाय-पास करके उनमें सर्जरी करके इतिहास, उसके समाज को, उसका सही संदर्भ देने का प्रयत्न किया गया है । विचारभेद बाहरवालों में ही नहीं अपनों के अपनों में भी है, जिसका निरुपण तटस्थता से होता दिखाई देता है ।

उदाहरण के तौर पर व्यापार, व्यापरियों की मुनाफ़ारवोरी का संबंध हर जगह समान ही होगा, वहां सब कुछ बायपास करके व्यापारी रुपयों का - लक्ष्मी का ही सोचेगा और नगदनारायण का कोई धर्म नहीं होता, जात नहीं होती, देश-विदेश नहीं होता। इतना ही नहीं अपनी जाति की तुलना, आलोचना करने में भी लेरिवका ने सजगता दिरवाई है। रचनाकार जब अपनी जड़ों को पहचानता है वही डीकॉलोनाइसेशन है निर्वासाहतीकरण है। स्वतंत्रता से 'सोचना और मानना' उपनिवेश का विघटन है और सोचने, मानने के साथ मनुष्य को मनुष्य के रुप में देरवना, समझना मनुष्य की सब से बड़ी और सही दिशा है जहां पर हर चीज से मनुष्य निर्वासाहतिक हो जाता है। इस उपन्यास में मसजिद को बचाने जानेवाला 'अमोलक' अपने ही लोगों द्वारा मारा जाता है और अपने ही लोग उसे 'विधर्मी' कहते हैं ऐसे ही विधर्मी की ढकोसलेबाजी को किशोर के पात्र द्वारा उजागर किया गया है। (पृ. १६२, १६३) इसी 'अमोलक' की जान एक मुसलमान रिक्शेवाले ने बचाई थी उसे कौनसा धर्म कहें ?

... अमोलक और किशोर चौरंगी से बड़ाबाजार जा रहे थे अचानक एक भागते हुए लुंगीवाले आदमी को चार पांच आदमियों ने पकड लिया था। अमोलक उसे छुडाने जाता है तो वे लोग रिक्शेवाले के साथ अमोलक को भी मारने लगे – "साला, यह भी कटवा है क्या ? तीन लोगों ने मिलकर उसकी पैंट रवोल दी - कटवा हैं कटवा है" कहकर एक ने चाकू रवोल दिया। अमोलक को बचपन में पेशाब करने में असुविधा होनेपर उसकी इंद्रिय की चमड़ी हटाने का एक छोटा-सा ऑपरेशन हुआ था तो वह भी "कटवा" हो गया। उस समय लुंगीवाला मुसलमान चिल्लाया – 'नाहीं ओ मुसलमान नाहीं। ओकर बाप कोंग्रेस का लीडर था। रामरिव बाबू का लड़कवा... " और अमोलक को जीवन-दान मिला।

हमारे लेरवकों को अब समझ लेना चाहिए कि हमारे लेरवन में हमें, अब अपनी अस्मिता को उभारना होगा। कॉलोनियल कानून को तोड़कर मस्तिष्क की गुलामी से मुक्त होना होगा।

हमारे वासाहतिक या औपनिवेशी संस्कारों को छिपाने की आवश्यकता नहीं है। जिन विचारों संस्कारों को हमने अपने औपनिवेशीकरण में स्वागत रूप में अपनाया है उन्हीं धागों को हमारे देशीकरण में गूंथकर आज के संदर्भ में उसे विश्लेषित करके उससे मुक्त हुआ जा सकता है यही निऔपनिवेशीकरण या - निर्वासाहतिकरण है। Plagiarism अर्थात साहित्यचोरी को एक साधन के रुप में उपयोग करके वासाहतिकरण से या औपनिवेशीकरण से डीकॉलोनाइज़्ड हुआ जा सकता है।

किसी भी वाद से निर्वासाहतिक होना हो तो उसका तरीका यही होता है कि उसे समझें, स्वीकारें, विश्लेषित करें, उपयोगी मानें। वाङ्मय चोरी से साहित्य और फूलते-फलते हैं इसे ही साहित्यिक और सांस्कृतिक उद्योग कहा जाता है। 'कलि-कथा' में जो कमेंट लेरिवका देती है वह देरवें –

"माँ कहती है कि हम अपने इतिहास को मिटा नहीं सकते। इसलिए उस पर हमें शर्म या ग्लानि महसूस नहीं करनी चाहिए। हमारे पुररवों ने जो ठीक समझा, उन्होंने किया। हम जो ठीक समझेंगे, वह करेंगे। इतिहास से मुक्त होकर ही हम ठीक से जी सकते हैं। (पृ. १००)

शायद इतिहास को – History को His+story ठीक से समझने के कारण ही लेखिका अपनी जाति का पिछ्डापन, भोंदूपन, कायरपन, व्यापारी मुनाफाखोरी - मानवता के खिलाफ - जैसे विचार कर सकी हैं । एक समय में जो ठीक था आज नहीं, आज जो ठीक है वही आवती काले मतलब आनेवाले कल में ठीक नहीं होगा । तभी तो इतिहास बताता है कि –

'अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक कलकत्ता फोर्ट विलियम अढ़ाई सौ एकड़ के फैलाव के अंदर युरोपियनों, आरमेंनियनों, पुर्तगाली क्रिश्चियनों के रहने का घिरा हुआ स्थान बन गया था, जिसे गोरे शहर के रुप में जाना जाता था । इसके बाहर नदी के मुहाने से करीब साढ़े तीन मील उत्तर तक 'नेटिव' या कालाशहर बसा था इन दोनों को घेरती हुई 'मराठा खाई' थी जो मराठों के आक्रमण से कलकत्ते को बचाने के लिए बनाई गई थी । उपन्यास में पृ. २०७ पर पुनश्च में उसी "मराठा डिच" के बारे में जो लिखा है वह देखें –

"दक्षिण कलकत्ता के इस खास भीड़ भरे इलाके में गोल घूमकर उत्तर की तरफ जाती सड़क - जिसे सारी धुंआ उगलती बसों, मिनी बसों, टैक्सियों के गंधाते – खीझते चालक और तमाम नई गाड़ियों के पुलकित - हृदय चालक लोअर सर्कुलर रोड) या आचार्य जगदीशचंद्र बोस रोड) और अपर सर्कुलर रोड (या आचार्य प्रफुल्लचंद्र रॉय रोड) के नामसे जानते हैं) की भी अपनी एक कहानी है । कभी यह सड़क कलकत्ता को मराठों के आक्रमण से बचाने की लिए बनाई गई मराठी खाई - मराठा डिच - थी जिसके लिए साहबों ने बाकायदा "देशी" लोगों से पैसे वसूले थे ..."

इस उद्धरण को विश्लेषित करें तो यहां 'देशी' शब्द सोचने लायक है । हमारे देश में देशी कौन है ? 'साहब? उस समय के आज के ? वे 'विदेशी साहब' थे आज 'देशी साहब' है जो विदेशी नहीं है, पर विदेशी की तरह सोचते हैं । इस मराठा खाई को देशियों ने देशियों के खिलाफ ही बंधवाई थी ... देशी लोगों ने विदेशी साहबों को बाकायदा पैसे दिए थे । आज देशी लोगों में देशी लोग देशी लोगों को ही मराठा - खाई नहीं, पर 'मानवता - खाई' बनाने में सहायता कर रहे हैं । लोअर 'अपर' तो क्या कॉलोनी कॉलोनियल जैसे हजारों शब्द कभी ठीक नहीं लगते थे, आज ठीक लग रहे हैं । विदेशी साहब यहां काली माई के पास गोरे नगर में बसे, वे आज वर्ण संकर संस्कृति में देशी हो गए और काले नगरवाले देशी लोग विदेशी 'पोस्ट' होकर 'पोस्ट कॉलोनियल नगर' से एन आर आइ बनकर आए । क्या निर्वासाहतिक बनकर आए ? या पुनर्वसन करने आए ? या एक जमाने के 'देशी' पोस्ट होकर वापसी में विदेशी बन गए ? लगता है आज हमें इन सब 'पोस्ट इज़म' को बाइपास करना होगा और अपनी वर्नाक्युलर में देशजता को प्लेजरिसम के संबंधों में जांचना होगा । इतिहास को बाइपास करना हमारी नादानी होगी जगहों के नाम बदलने से या पुतलों को बदलने से तो हम फिर इतिहास को मिटाने के चक्कर में नामों में ही उलझेंगे । अयोध्याकांड में राम, रसूल और मसीहा को बेचेंगे । अपनी - अपनी रोटी सेकेंगे । वास्तव में हम करते क्या हैं ? एक रास्ता जाम हो तो हम दूसरा बना लेते हैं जो उस रास्ते के दोनों सिरों से जुड़ता हो । कभी वन - वे बना लेते हैं । हम समस्या को बाइपास करने के रास्ते ढूंढते हैं । अपने रास्तों को बाइपास कर देते हैं । नतीजा एक समय ऐसा आता है कि सब बाइपासों से डैड एण्ड होकर हमें अपनी जड़ें खोजने वापस मुड़ना

ही बाकी बचता है ... पुरानी जड़ों को खोजकर नई जड़ों से मिलाकर ग्राफ्टेड और क्राफ्टेड कल्चर में इतिहास से होते हुए नए इतिहास को रचने वाला समाजों के अर्थशास्त्र, मानसशास्त्र, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र, नृवंशशास्त्र से मानव के लिए मानव बनकर पास ऑन करना है - जो हमारी आनेवाली पीढ़ी की अमानत है। अगर इसे बाइपास करवाने में चूके तो आनेवाला कल हमें कभी माफ नहीं करेगा। उपन्यास की रचनाशीलता पर सोचते सोचते प्रयत्न तो यही किया है कि रचनाकार के बिंदुओं को एक पाठक के बिंदुओं से देखूं, समझू। अगर पूरा - पूरा समझ न भी पाऊँ तो कम - से - कम 'लगभग' ही समझकर, संप्रेषित कर पाऊं। वैसे भी रचनाकार का सच पाठक तक पहुंचते - पहुंचते वाया बहुत सारे लोअर, अपर घुमावों से पहुंचता है। मनुष्य बहुत बार अपने बारे में भी सबकुछ नहीं जान पाता। जो जानता है उसे ठीक बयां नहीं कर पाता, कुछ छूटता है, कुछ छोड़ना पड़ता है... मनुष्य की जिंदगी में सबकुछ लगभग होता है ... एप्रोक्सिमेट .... हिंदुस्तान में दो संस्कृतियां समानान्तर नहीं चलती ... यहां इनके रास्ते एक दूसरे से अपने - अपनों से, पराए - परायों से, अपने-परायों से बार-बार मिल जाते हैं ... तभी तो जम्मू में रहनेवाला हिन्दुस्तानी श्यामलाल अंगारा के पास तुलसी कृत रामायण की एक ऐसी प्रति है जिस पर लिखा है "बिसमिल्लाह - ए - रहमान - ए रहिम बोलो – फिर रामायण पढो।" आश्चर्यजनक लग सकता है पर हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी के लिए यही हिन्दुस्तानियत है पर्शियन मौलवी इमाम अल्दि ने सालों पहले संत तुलसीदास का रामचरित मानस पर्शियन भाषा में अनुवाद किया था। श्यामलाल के पास उसीकी एक नकल है। मुंशी जिरागदन और सिराजदिन ने इसे एजबेस्टन प्रेस, रावलपिंडी (अब यह पाकिस्तान में है) में ईसवी सन १८८९ में छपवाया था। रामायण के भाषांतर के साथ-साथ उसीमें हातिमताई के किस्से नाम से कहानियां भी हैं। आज की तारीख में भी टी. वी. पर महाभारत की पटकथा लिखनेवाले राही मासूम रज़ा ही तो है। अवाम के लिए सेक्यूलरिझम क्या है इसकी पूरी जानकारी के बगैर ही "टोपीवाले" और "झंडेवाले" अयोध्या के नाम पर अपनी - अपनी रोटियां सेंक रहे हैं .. कोई भी अहिन्दू व्यक्ति हिन्दू धर्म के सर्वोच्च धार्मिक ग्रंथ का भाषांतर करे और उसे पूरे सम्मान के साथ प्रजा के सामने भी रखे इसका उत्कृष्ट उदाहरण श्यामलालजी के पास रखी हुई रामायण की वह प्रति है। श्यामलाल जी का परिवार बरसों पहले भारत - पाकिस्तान की सरहद के पासके कल्याणपुर गांव में रहता था। १९५५ में तावी नदी में बाढ़ आने से उनका पूरा परिवार जम्मू आकर बस गया था। उनके मत से बिसमिल्लाह शब्द ॐ नमः शिवाय जितना ही पवित्र है। हमारे यहां अपनों परायों की राह अलग करना हिन्दुस्तानीपन की तौहीन करने समान है। हमारी संस्कृतियां समांतर नहीं चलतीं पर एक-दूसरे में दूध में शक्कर की तरह घुलमिल जाती हैं। उसे बायपास नहीं किया जा सकता। आज के रचनाकार का यह दायित्व है कि वह अपनी रचनाशीलता में अपने हिन्दुस्तानीपन को टटोले और उसीका वहन भी करे ...।

एकलव्य की नियति उस समय यही थी कि पावर पॉलिटिक्स में उसे अपना अंगूठा खोना पड़ा.. बुद्धि और सत्ता का कितना बड़ा खेल कि पूरी भील जाति को उसने आगे बढ़ने नहीं दिया ? ज्ञान, सत्ता और राजकारण का चक्र उस समय भी सक्रिय था आज

भी परिस्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। कलि-कथा के किशोर बाबू का कहना है कि "देख लेना वे फिर आयेंगे"। मैं कहती हूं "वे आ चुके हैं" — अपने अपने माल - सामान के साथ हमारे पूरे देश को 'डंपिंग ग्राउन्ड' बनाने में वे कार्यरत हैं। क्या हमने उन्हें पहचाना ? शासन बदला पर सामान्य मनुष्य को क्या मिला ? उसके लिए तो वही चक्र - शासक, शोषण, शैक्षणिक ज्ञान, सत्ता और राजकारण-घूमता ही है। मनुष्य बदले पर पावर पॉलिटिक्स आज भी जारी है। एकलव्य का अंगूठा तो बचाना ही है, साथ-साथ में अपने-अपने अंगूठों को भी सलामत रखना है। सत्ता के लालची लोगों के हाथों में मंदिर, मसजिद, गुरुद्वारा, गिरजे न जाएं इसका ध्यान रखना है। हिन्दुस्तानी रचनाकारों के लिए अपनी रचनाशीलता में यही आज सबसे बडी चुनौती है।

- डॉ. चंद्रलेखा
कोंकणी विभाग - गोवा विश्वविद्यालय
गोवा

ООО